आकर निरीश्वरवाद की ओर मुड़ गया। बाद में फिर सांख्य दर्शन में ईश्वर को प्रतिष्ठा मिली। जो भी हो आज सांख्य की गणना निरीश्वरवादी दर्शन के रूप में ही होती है। सेश्वर सांख्य के रूप में योग दर्शन को स्वीकार किया जाता है।

19.5 योग दर्शन में ईश्वर का स्वरूपः–

योग दर्शन ईश्वर को स्वीकार करता है और इसी रूप में वह सांख्य से भिन्न है। योग और सांख्य समान तत्व होते हुए क्रमशः सेश्वर सांख्य और निरीश्वर सांख्य कहे जाते हैं।

सांख्य दर्शन ने प्रकृति और पुरुष से भिन्न किसी अन्य ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं समझी। उसके अनुसार प्रकृति के स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण ही प्रकृति में गुण क्षोभ तथा उससे सृष्टि का उद्भव और विकास पुरुष के कैवल्य के लिए होता है। इस प्रक्रिया में किसी तीसरे तत्व की आवश्यकता नहीं होती। पुनः सांख्य दर्शन की दृष्टि में पुरुष के कैवल्य हेतु ज्ञान की आवश्यकता है, किसी ईश्वर की भक्ति या उसकी सहायता की आवश्यकता नहीं होती। जबकि योग दर्शन ज्ञान हेतु चित्त का शुद्धि व इस हेतु ईश्वर प्रणिधान पर बल देता है। योग दर्शन सांख्य दर्शन की तत्वमीमांसा को तर्क संगत बनाने के लिए ईश्वर की सत्ता को स्वीकार कर सांख्य की कमियों से स्वयं को मुक्त कर लिया है।

यद्यपि योग दर्शन ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करता है। फिर भी योग दर्शन में ईश्वर का मूल्य महत्त्व और स्थान वह नहीं है जो कि न्याय दर्शन में ईश्वर को प्राप्त है। योग दर्शन में ईश्वर का व्यावहारिक महत्त्व है। ईश्वर साधन है, साध्य नहीं।

योग दर्शन का मुख्य उद्देश्य चित्तवृत्तियों का निरोध है, जिसकी प्राप्ति ईश्वर प्रणिधान से सम्भव मानी गई है। योग सूत्र में ईश्वर को समाधि के अंग के रूप में ध्यान केन्द्रित करने के लिए स्वीकार किया गया है। यहाँ ईश्वर प्रणिधान प्रथम अध्याय (1–23) में ईश्वर के प्रति भक्ति के अर्थ में तथा दूसरे अध्याय (2–32) में सभी कर्मो को ईश्वर को समर्पित करने या कर्म फल का त्याग करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार योग सूत्र में ईश्वर केवल साधन है, साध्य नहीं है।

ईश्वर के स्वरूप के सम्बन्ध में महर्षि पतंजलि कहते हैं–

1. **'क्लेशकर्मविपाका शयैरपरामृष्टःपुरुष विशेष ईश्वरः'' (योग सूत्र 1/24)**
2. **'तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम' (योग सूत्र 1/25)**
3. **स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। (योग सूत्र 1/26)**
4. **तस्य वाचकः प्रणवः। (यो॰ सू॰ 1/27)**
5. **तज्जपस्तदर्थभावनम्। (योग सूत्र 1/28)**
6. **ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च। (योग सूत्र 1/29)**

19.5.1 पुरुष विशेष ईश्वरः

महर्षि पतंजलि ने ईश्वर को पुरुष विशेष कहा है। उनके अनुसार क्लेश, कर्म, विपाक एवं आशय से सर्वथा मुक्त, अन्य पुरुषों से विशेष (उत्कृष्ट) पुरुष ही ईश्वर है।

क्लेशः– जो दुख देते हैं उन दुख के कारणों को क्लेश कहते हैं। क्लेश पाँच हैं– अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश यानी (जीवित रहने की इच्छा)।

कर्म– इन क्लेशों से शुभ–अशुभ और इनसे मिश्रित कर्म उत्पन्न होते हैं।

विपाकः– कर्मो के फल को विपाक कहते हैं।

आशय– कर्म संस्कारों के समुदाय का नाम आशय है अर्थात सुख दुख भोग आदि से उत्पन्न वासना ही आशय है।

सामान्य पुरुष इन क्लेश कर्म आदि से प्रभावति होते हैं जबकि ईश्वर इनसे सर्वथा अप्रभावित है। सामान्य जीव अविद्या राग–द्वेष आदि से प्रभावित हो कर्म करता और फल भोगता है जबकि ईश्वर इन सबसे मुक्त है। ईश्वर बन्धन ग्रस्त जीवों (पुरुषों) से तो विशेष है ही, वह मुक्त आत्माओं से भी विशिष्ट है। क्योंकि मुक्त आत्माएं पहले बन्धनग्रस्त थीं बाद में योग साधना से मुक्त हुईं जबकि ईश्वर नित्य मुक्त है। वह कभी भी बन्धन में नहीं था और न उसके भविष्य में बन्धन ग्रस्त होने की आशंका है। इस प्रकार का पुरुष विशेष ही ईश्वर है।

योग दर्शन में ईश्वर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान, सर्वव्यायी, नित्य, अनादि, अनन्त, आप्त काम एवं पूर्ण है। वह त्रिगुणातीत है।

ईश्वर में ऐश्वर्य और ज्ञान की पराकाष्ठा है। ईश्वर गुरुओं का भी गुरु है। वह वेद शास्त्रों का प्रथम उपदेष्टा है। प्रणव उसका वाचक है यानी ऊँ उसका प्रतीक है। ईश्वर एक है। वह दयालु एवं करूणाशील है। जो ईश्वर की भक्ति करते हैं ईश्वर उनकी सहायता करता है और योग मार्ग की रूकावटों को दूर करता है।

यद्यपि योग दर्शन में ईश्वर को विश्व का सृष्टि कर्ता, पालन कर्ता और संहार कर्ता के रूप में नहीं बताया गया है किन्तु व्यासभाष्य तथा वाचस्पति मिश्र की तत्ववैशारदी में ईश्वर का सृष्टि रचयिता आदि का स्वरूप भी प्राप्त होता है। सृष्टि प्रकृति के विकास के फलस्वरूप ही हुई है। यद्यपि ईश्वर विश्व का स्रष्टा नहीं है, फिर भी वह विश्व की सृष्टि में सहायक होता है। विश्व की सृष्टि प्रकृति और पुरुष के संयोग से प्रारम्भ होती है। इन दो विपरीत तत्वों को मिलाने (संयोग कराने) में ईश्वर सहयोगी है। (यहाँ योग दर्शन ईश्वर को मानकर सांख्य की प्रकृति–पुरुष संयोग की कठिनाई से बच जाता है) इस प्रकार ईश्वर विश्व का निमित्त कारण है और प्रकृति उपादान कारण।

यदि ईश्वर को मानने वाले सभी आस्तिक दर्शनों पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि सभी ईश्वरवादी भारतीय दर्शन ईश्वर की निम्न विशेषताओं को स्वीकार करते हैंः–

1 सृष्टि का रचयिता

2 कर्म फल प्रदाता

3 एक, नित्य, शाश्वत

4 सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी

5 वेदों का रचयिता

6 दयालु, कृपालु, करूणाशील

किन्तु निम्न लिखित बातों में हमें उक्त दर्शनों में असहमति (मतभेद) भी प्राप्त होते हैं—

1. शांकर वेदान्त (अद्वैत वेदान्त) में ईश्वर को सृष्टि का निमित्त और उपादान, दोनों प्रकार का कारण माना गया है। जबकि न्याय, वैशेषिक और योग दर्शन ईश्वर को केवल निमित्त कारण मानते हैं उपादान कारण नहीं। सृष्टि के उपादान कारण के रूप में न्याय—वैशेषिक परमाणुओं को मानते हैं जबकि साख्य—योग दर्शन प्रकृति को।

2. सभी वेदान्ती सृष्टि का उद्देश्य ईश्वर की लीला मानते हैं जबकि योग दर्शन में यह प्रयोजन ईश्वर द्वारा प्राणियों पर अनुकम्पा या करुणा माना गया है और न्याय दर्शन में ईश्वर का स्वभाव।

19.5.2 जीव, आत्मा एवं ईश्वर

योग दर्शन में आत्मा और परमात्मा दो अलग तत्व हैं। आत्मा पुरुष तत्व है जबकि परमात्मा, पुरुष विशेष ईश्वर है। बन्धग्रस्त पुरुष जीवात्मा है। ईश्वर, जीव एवं आत्मा से अलग तत्व है। जीवात्मा क्लेश कर्म विपाक आदि से ग्रस्त हो बन्धन में पड़ती, दुख भोगती और योग साधना द्वारा चित्त शुद्धि एवं विवेक ज्ञान होने पर बन्धनों से मुक्त होती जबकि ईश्वर इन क्लेश कर्म विपाक आदि से सर्वथा परे है। वह जन्म मरण के बन्धनों से मुक्त है। ईश्वर मुक्त आत्माओं से भी भिन्न है क्योंकि मुक्त आत्माएं पहले बन्धन ग्रस्त थीं और भविष्य में पुनः उनके बन्धन ग्रस्त होने की आंशका हो सकती है, जबकि ईश्वर न तो कभी बन्धन ग्रस्त था और न ही ईश्वर के भविष्य में भी कभी बन्धन ग्रस्त होने की सम्भावना है क्योंकि वह इन सबसे हमेशा हमेशा के लिए मुक्त है इसीलिए तो वह विशेष पुरुष है। पुनः ईश्वर एक है जबकि पुरुष या आत्मा अनेक हैं। शंकाराचार्य के अद्वैतवेदान्त में आत्मा और ब्रह्म एक है। और मुक्त आत्मा ब्रह्म में लीन हो जाती है। उसका ब्रह्म से अलग अस्तित्व नहीं रहता जबकि योग दर्शन में मुक्त पुरुष ईश्वर के साथ—साथ अपना अलग अस्तित्व बनाये रखते हैं और पुरुष (आत्मा) एक न होकर अलग—अलग हैं। ईश्वर सदैव ऐश्वर्यवान है और सदैव मुक्त है। न कोई उसके समान है और न कोई उससे बड़ा है।

सदैवेश्वरः सदैव मुक्त इति।

तच्च तस्यैश्वर्य साम्यातिशयविनिर्मुक्तम् न तावत् ऐश्वर्यान्तरेण तदतिश्य्यते।

योग ग्रन्थ भोजवृत्ति में भी कहा गया है कि ईश्वर एक है, अनेक नहीं है–

" न चेश्वराणामनेकत्वम्"

ईश्वर इस जगत का निमित्त कारण है। ईश्वर की प्रेरणा से ही प्रकृति पुरुष में संयोग वियोग की प्रक्रिया होती है तथा सृष्टि एवं प्रलय होता है।

'प्रकृतिपुरुषसंयोगवियोगयोरीश्वरेच्द्वाव्यतिरेकेणानुपपत्तेः।

जीव अल्पज्ञ है जबकि ईश्वर सर्वज्ञ है। ईश्वर ज्ञानादि गुणों की (ऐश्वर्यों की) पराकाष्ठा है।

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्। (प॰ योग सूत्र 1/25)

19.5.3 योग दर्शन में ईश्वर के अस्तित्व के प्रमाण

न्याय दर्शन की तरह योग दर्शन में भी ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए प्रमाण दिये गये हैं। यद्यपि स्वयं पंतजलि ने ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया था किन्तु बाद में योग सूत्र के भाष्यकारों ने तर्को के माध्यम से ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने का प्रयास किया। इस सम्बन्ध में कुछ प्रमुख युक्तियाँ (तर्क) निम्नलिखित हैं–

1. शब्द प्रमाणः– ईश्वर की सत्ता के लिए आगमशास्त्र प्रमाण हैं। वेद एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। वेद में जो कुछ कहा गया है वह पूर्णतः सत्य है। वेद में ईश्वर का वर्णन है। वेद के अतिरिक्त उपनिषद् एवं अन्य शास्त्रों भी ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। तथा उसकी प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य मानते हैं। इससे प्रमाणित होता है कि ईश्वर की सत्ता है। इस प्रकार शब्द प्रमाण से ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध है। व्यास ने योग भाष्य में ईश्वर के पूर्ण स्वभाव (प्रकृष्टसत्व) के लिए शास्त्र को ही प्रमाण माना है।

2. ज्ञान की पराकाष्ठाः– अविच्छिन्नता नियम के अनुसार संसार में जितनी भी न्यूनाधिक मात्रा होती है, उसकी अल्पतम और अधिकतम सीमा भी अवश्य होती है। जैसे भौतिक वस्तुओं का अल्पतम रूप परमाणु है तो विशालतम (अधिक मात्रा वाला) रूप आकाश है। इसी प्रकार ज्ञान की न्यूनाधिक मात्रा भी हमें विभिन्न मनुष्यों में दिखाई देती हैं। अतः ज्ञान की अधिकतम मात्रा भी किसी में होनी चाहिए। वह सर्वज्ञ सत्ता ही ईश्वर है–

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्। (प॰ योग सूत्र 1/25)

3. प्रकृति पुरुष में संयोग एवं वियोग कर्ता ही ईश्वर है–

योग दर्शन के अनुसार प्रकृति एवं पुरुष के संयोग से जगत का विकास (सृष्टि) होता है और वियोग से प्रलय होता है। किन्तु प्रकृति और पुरुष एक दूसरे से सर्वथा भिन्न विपरीत तत्व हैं, जिससे इनका संयोग और वियोग स्वतः नहीं हो सकता। इनका संयोग और वियोग

कराने हेतु एक सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान सत्ता का होना आवश्यक है। वह सत्ता विशेष पुरुष ईश्वर ही है। अतः ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध है–

प्रकृति पुरुषसंयोगवियोगयोरीश्वरेच्द्धाव्यतिरेकेणानुपपत्तेः।

4. योगभ्यास में सहायक ईश्वरः– ईश्वर का अस्तित्व इसलिए भी आवश्यक है कि वह योगाभ्यास में सहायक है। ईश्वर प्रणिधान समाधि का साधन है। वैसे तो ध्यान का विषय कुछ भी हो सकता है किन्तु यदि ईश्वर पर ध्यान किया जाए तो ईश्वर की शरणागति से ईश्वर की कृपावश योग मार्ग के अवरोध मिट जाते हैं और योग मार्ग सुगम हो जाता है। अतः योग साधना की दृष्टि से भी ईश्वर का अस्तित्व मानना आवश्यक है।

19.5.4 ईश्वर का वाचक 'प्रणव' ही क्यों?

महर्षि पतंजलि ने ईश्वर को प्रणव नाम से सम्बोधित किया है उनके अनुसार–

तस्य वाचकः प्रणवः। (योगसूत्र 1/27)

अर्थात् उस ईश्वर का वाचक (नाम) प्रणव (ॐकार) है। प्रणवपद की व्युत्पत्ति करते हुए **स्वामी दयानन्द सरस्वती** सत्यार्थ प्रकाश में लिखते है जिस पद द्वारा प्रकम रूप से परमात्मा की स्तुति की जाय, उस पद को प्रणव कहते हैं और ऐसा पद ओउम है। यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इसमें जो अ, उ, और म तीन अक्षर मिलकर एक ओउम समुदाय बना है। इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आ जाते हैं। जैसे अकार से विराट् अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्य गर्भ, वायु और तैजसादि। तथा मकार से ईश्वर आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है। ईश्वर के अन्य नाम उसके किसी एक ऐश्वर्य या गुण को अभिव्यक्त करते हैं। जबकि ॐ में उस परमेश्वर के सभी गुण समाहित है। यह ॐ का शब्द उसके पूर्ण स्वरूप को अभिव्यक्त करता है। शास्त्रकारों ने ईश्वर को सत् चित् आनन्द स्वरूप कहा है। इन तीनों गुणों का ही समन्वित रूप ॐ है। अकार से आनन्द, उकार से चित् और मकार से सत् का बोध होता है।

व्यास भाष्य में प्रश्न किया गया है कि क्या ईश्वर और प्रणव का वाच्य–वाचक संकेत मनुष्य की कल्पना है या दीपक और प्रकाश की तरह नित्य सम्बन्ध? इस शंका को समाधान करते हुए भाष्यकार कहते हैं कि इस वाच्य ईश्वर का वाचक प्रणव के साथ नित्य सम्बन्ध है। सकेंत तो केवल अर्थ को प्रकट करता है। जैसे ''यह इसका पिता और यह उसका पुत्र है'' यह संकेत कथन पिता पुत्र के सम्बन्ध को उत्पन्न नहीं करता अपितु पहले से विद्यमान सम्बन्ध को प्रकट मात्र करता है। वैसे ही वाचक और वाच्य ईश्वर का नित्य सम्बन्ध है। अतः प्रणव ही ईश्वर का वाचक है।

माण्डूक्य उपनिषद में प्रणव (ॐकार) को ब्रह्म स्वरूप बताया गया है–

प्रणवो ह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्च परः स्मृतः। (माण्डूक्य उपनिषद आगम प्रकरण 26)

अर्थात् प्रणव (ॐकार) ही परब्रह्म और अपर ब्रह्म माना जाता है।

कठोपनिषद् में भी 'ऊँ' को ब्रह्म कहा गया है–

'एतंद्वयेवाक्षरं ब्रह्म'। (कठोपनिषद, द्वितीय वल्ली 16)

अर्थात् यह प्रणव (ऊँ) अक्षर ही ब्रह्म है।

मनुस्मृति के अनुसार भी एकाक्षर ऊँ पर ब्रह्म है–

एकाक्षरं परं ब्रह्म्। (मनुस्मृति 2.83)

इस प्रकार ईश्वर के अनन्त गुणों का बोध कराने वाले उसके गुण कर्म स्वभाव के आधार पर असंख्य नाम है परन्तु जिस नाम में उसके सभी गुण आ जाते हैं, वह एकाक्षरी नाम ऊँ है। ओ३म में परमात्मा के सभी गुण समाहित हैं। मनुस्मृति के अनुसार ऊँ वेदों का सारतत्व है। मनु महाराज कहते हैं कि प्रजापति भगवान में तीनो वेदों को मथा और मथकर भूः भुवः स्वः रूप मक्खन इन वेदों मे से निकाला और इसी प्रकार से अत्यन्त सार रूप अ, उ, एवं म अर्थात ओ३म इन वेदों के घृत रूप में प्रकट हुआ–

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।

वेदत्रयान्निरहुद् भुर्भुवः स्वारितीति च।। (मनुस्मृति 2.76)

वेद स्वयं प्रणव रूप ऊँकार के विषय में उपदेश देते हुए समस्त मानवों से कहता है–

''ओ क्रतो स्मर''। (यजुर्वेद 40.15)

अर्थात् हे जीव तो ओं का स्मरण करें।

''ओं रव ब्रह्मं''। (यजु॰ 40.17)

अर्थात् मैं ओं आकाशवत् व्यापक और सबसे बड़ा हूँ–

''ओ प्रतिष्ठ'' (यजु॰ 2.13)

अर्थात् ओं में स्थित हो।

इस प्रकार समस्त वेद शास्त्रों में उस ईश्वर को प्रणव रूप ओंकार रूप में उपासना करने की शिक्षा प्राप्त होती है। इसलिए महर्षि पतंजलि भी ईश्वर का वाचक प्रणव बताते हैं (तस्य वाचकः प्रणवः) और कैवल्य की प्राप्ति हेतु उसी का जप भाव पूर्वक करने का निर्देश देते हैं–

तज्जपस्तदर्थ भावनम्। (योग सूत्र 1/28)

श्री मद्भगवद् गीता में भी भगवान श्री कृष्ण का उपदेश है–

ओमित्येकाक्षंर ब्रह्म, व्याहरन् मामनुस्मरन्।

यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गति।। (गीता 8.1)

अर्थात्– ऊँ इस एक अक्षर ब्रह्म को जपता हुआ और उसके अर्थ को जानता हुआ जो देह त्याग करता है, वह परमगति को प्राप्त होता है।

19.5.5 ईश्वर प्रणिधानः–

योग दर्शन में ईश्वर का प्रतिपादन एक ऐसे तत्व के रूप में हुआ है। जिसे ध्येय बनाकर साधक शीघ्र समाधि एवं मुक्ति प्राप्ति में समर्थ हो सकता है। समाधि 8 एवं उसके फल कैवल्य की प्राप्ति हेतु ईश्वर प्रणिधान का विशेष महत्त्व है। ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है– ईश्वर की भक्ति, ध्यान एवं समर्पण। **व्यास भाष्य** के अनुसार सभी क्रियाओं को परमगुरु परमात्मा में अर्पण करना और उसके फल की इच्छा का त्याग करना अर्थात निष्काम कर्म करना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है। **भोजवृत्ति** के अनुसार ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है– ईश्वर की भक्ति, उसकी विशेष उपासना, अपनी सभी क्रियाओं को ईश्वर में अर्पण करना, विषय सुख आदि को भी ईश्वर पर छोड़ देना, निष्काम कर्म, फल की इच्छा न करना आदि। ईश्वर प्रणिधान समाधि और उसके फल लाभ का सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

पातंजल योग दर्शन में महर्षि पतंजलि ने ईश्वर प्रणिधान सम्बन्धी मुख्यतः निम्न चार सूत्रों का उल्लेख किया है–

1. **ईश्वर प्रणिधानात् वा। (योग सूत्र 1/23)**
2. **तपः स्वाध्यायः ईश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः। (योग सूत्र 2/11)**
3. **शौचसंतोषतपः स्वाध्यायः ईश्वर प्रणिधानानि नियमाः। (योग सूत्र 2.32)**
4. **समाधि सिद्धिः ईश्वर प्रणिधानात्। (योग सूत्र 2.45)**

योग सूत्र के समाधिपाद में 23 वाँ सूत्र तथा साधनपाद का पहला, 32 वाँ और 45 वाँ सूत्र 'ईश्वर प्रणिधानात्' से सम्बन्धित हैं। ईश्वर प्रणिधान का सर्वप्रथम उल्लेख समाधिपाद में है। साधनपाद में क्रियायोग और नियम के अन्तर्गत ईश्वर प्रणिधान का उल्लेख है तथा साधन पाद में ही ईश्वर प्रणिधान से समाधि प्राप्ति का वर्णन उपलब्ध होता है।

अब प्रश्न यह है कि उपर्युक्त सभी स्थलों पर वर्णित ईश्वर प्रणिधान का अर्थ एक ही है या अलग अलग। पुनः यदि ईश्वर प्रणिधान से ही समाधि की प्राप्ति हो जाती है तो फिर क्या अन्य मार्ग एवं योग के अन्य अंग व्यर्थ है?

समाधिपाद में वर्णित ईश्वर प्रणिधान ध्यान योग एवं भक्ति प्रधान है। यह समाधि का सुगम मार्ग है

'तज्जपस्तदर्थभावनम्' (योग सूत्र 1/28) सूत्र के अनुसार जप करने एवं ईश्वर का ध्यान करने से समाधि की प्राप्ति होती है।

साधनपाद के प्रथम सूत्र में ईश्वर प्रणिधान क्रिया योग का एक अंग है। तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान को क्रिया योग कहा गया है। यहाँ ईश्वर ध्यान का विषय नहीं है अपितु ईश्वर को लक्ष्य करके कर्म फल त्याग का भाव यानी निष्काम कर्म करने का अभ्यास है।

साधनपाद में ईश्वर प्रणिधान का वर्णन करते हुए **भाष्यकार व्यास** कहते हैं– सभी क्रियाओं का परम गुरु परमात्मा में अर्पण करना तथा उसके फल की इच्छा का त्याग करना अर्थात निष्काम कर्म करना ही ईश्वर प्रणिधान कहलाता है। इस सूत्र में प्रणव आदि जप ध्यान और शास्त्रों का अध्ययन स्वाध्याय के अन्तर्गत समाविष्ट है।

साधनपाद के ही सूत्र संख्या 32 में ईश्वर प्रणिधान की चर्चा नियम के अन्तर्गत है। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान नियम कहलाते हैं। नियम वे हैं जिनका पालन करने से अन्दर बाहर की पवित्रता आती है। साधक का चित्त शुद्ध होता है और वह योग मार्ग के उपयुक्त बनता है और धीरे धीरे अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है। यहाँ ईश्वर प्रणिधान नैतिक अनुशासन और शारीरिक–मानसिक– तप का एक अंग है।

'समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्' सूत्र में ईश्वर प्रणिधान से समाधि प्राप्त होने की बात कही गई है। ईश्वर प्रणिधान से अविद्या से मुक्त होकर जीवात्मा पुरुष अपने वास्तविक रूप को पहचान जाता है। अब यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि जब ईश्वर प्रणिधान से ही समाधि की प्राप्ति हो जाती है तो फिर योग के अन्य अंगों के पालन की क्या आवश्यकता? किन्तु योग दर्शन में यह प्रश्न निरर्थक है। क्योंकि अष्टांग योग के सभी अंग परस्पर सम्बन्धित हैं। यम नियम एवं आसन आदि के पालन से साधक का शरीर व मन योग साधना के अनुकूल हो जाता है। चित्त की शुद्धि होने से ईश्वर प्रणिधान और समाधि की प्राप्ति सरल सहज हो जाती। ध्यान का विषय ईश्वर के अतिरिक्त भी कुछ हो सकता है किन्तु ईश्वर का ध्यान करने से योग के विघ्नों का नाश सरलता से हो जाता और साधक भटकने से बच जाता है इसलिए ईश्वर प्रणिधान के साथ योग के अन्य अंग भी एवं योग मार्ग भी समाधि में सहायक हैं।

19.5.6 ईश्वर प्रणिधान का फलः–

महर्षि पतंजलि ईश्वर प्रणिधान अर्थात उसके नाम जप और स्वरूप चिंतन (तज्जपस्तदर्थ भावनम्) के फल का वर्णन करते हुए कहते हैं–

''ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायभावश्च''। (योग सूत्र 1/29)

अर्थात् उक्त साधना से (ईश्वर प्रणिधान से) प्रत्यक् चेतना का अधिगम और अन्तरायों का अभाव हो जाता है।

इस सूत्र में प्रत्यक् चेतना का अर्थ **व्यास भाष्य** में जीवात्मा है जबकि महर्षि दयानन्द ने प्रत्यक् चेतना का अर्थ अन्तर्यामी ईश्वर किया है। यहाँ ईश्वर एवं जीवात्मा दोनों के अर्थ का ग्रहण किया जाना संगत है। ओंकार जप से चित्त शुद्ध होने पर जीवात्मा को अपने स्वरूप का बोध तो होता ही है, तदर्थभाव से ओउम स्वरूप ईश्वर का साक्षात्कार भी उसे हो जाता है। इस प्रकार व्यास भाष्य के अनुसार ईश्वर प्रणिधान से प्रत्यक् चेतना का

अधिगम यानी जीवात्मा को अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाता है जबकि स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार प्रत्यक् चेतना अधिगम से तात्पर्य है कि जीवात्मा को अन्तर्यामी परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है।

ईश्वर प्रणिधान का दूसरा फल अन्तरायों का अभाव है।

योग साधना के विघ्न–बाधाओं को अन्तराय कहते हैं। ये बाधाएं शारीरिक एवं मानसिक दोनों तरह की होती हैं। महर्षि पतंजलि ने योग अन्तरायों को ''चित्त का विक्षेप'' भी कहा है जो नौ प्रकार की होती हैं–

''व्याधि स्त्यान संशय प्रमाद आलस्य अविरति भ्रान्दिर्शन अलब्धभूमिकत्व अनवास्थितत्वानि चित्त विक्षेपाः ते अन्तरायाः।'' (योग सूत्र 1/30)

योग साधना में लगे हुए साधक के चित्त में विक्षेप उत्पन्न करके उसको योग साधना से विचलित कर देने वाले विघ्न स्वरूप योग अन्तराय निम्न 9 प्रकार के होते हैं–

1. **व्याधिः–** शरीर और मन में किसी प्रकार का रोग उत्पन्न हो जाना ही व्याधि है।

2. **स्त्यानः–** साधना में, सत्य कर्मों में प्रवृत्त न होना अर्थात अकर्मण्यता ही स्त्यान कहलाता है।

3. **संशयः–** स्वयं के प्रति, ईश्वर के प्रति या योग साधना के प्रति संदेह उत्पन्न हो जाना संशय है।

4. **प्रमादः–** मानसिक अस्थिरता एवं लापरवाही प्रमाद है।

5. **आलस्यः–** शरीर और मन आराम की इच्छा से पुरुषार्थ छोड़ देना साधना में प्रवृत्त न होना आलस्य है।

6. **अविरतिः–** विषय भोगों में तृष्णा का होना ही अविरति है।

7. **भ्रांतिदर्शनः–** भ्रम की स्थिति, मिथ्या ज्ञान भ्रांतिदर्शन कहलाता है।

8. **अलब्ध भूमिकतत्वः–** अर्थात समाधि की प्राप्ति न होना।

9. **अनवस्थितत्वः–** समाधि की प्राप्ति होने पर भी उसमें चित्त स्थिर न होना ही अनवस्थितत्व है।

ये नौ प्रकार के विघ्न साधक को विचलित करते रहते हैं और उसके चित्त को विक्षिप्त कर उसे योग मार्ग से भष्ट कर देते हैं इसीलिए इन विघ्नों को अन्तराय, चित्त के विक्षेप, योग के मल, विघ्न–बाधाएं अथवा योग के प्रतिपक्षी भी कहते हैं।

अन्तरायों का फलः– योग अन्तरायों के कारण चित्त विक्षेपों के साथ साथ दुख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास और प्रश्वास– ये पाँच विघ्न भी साथ–साथ उत्पन्न होते हैं–

"दुखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासाः विक्षेप सहभुवः।। (योग सूत्र 1/31)

1. दुख :– दैहिक, दैविक एवं भौतिक इन त्रिविध तापों को दुख कहते हैं। दैहिक या आध्यात्मिक दुख वह है जो काम, क्रोध आदि मनोविकारों या शारीरिक रोगों आदि निजीकरणों से शरीर एवं मन को भोगना पड़ता है। शत्रु, मनुष्य, पशु आदि वाह्य कारणों से होने वाली पीड़ा का नाम आधि भौतिक दुख है। तथा सर्दी, गर्मी, भूकम्प, सुनामी आदि प्राकृतिक घटनाओं से होने वाला दुख का नाम अधिदैविक दुख है।

2. दौर्मनस्यः– इच्छा की पूर्ति न होने पर मन में होने वाला क्षोभ दौर्मनस्य है।

3. अङ्गमेजयत्वः– शरीर के अंगो में होने वाला कम्पन (जिससे एक आसन पर ध्यान केन्द्रित करने में बाधा उत्पन्न होती है)

4. श्वासः– बिना इच्छा के बाहर की वायु का भीतर प्रवेश कर जाना अर्थात बाह्य कुम्भक में विध्न हो जाना श्वास है।

5. प्रश्वासः– बिना इच्छा के ही भीतर की वायु का बाहर निकल जाना अर्थात भीतरी कुम्भक में विध्न हो जाना प्रश्वास है।

ये विध्न केवल विक्षिप्त चित्त में ही होते हैं। शान्त चित्त अर्थात समाहित चित्त वाले योगी को नहीं होते। इसलिए इनको 'विक्षेप सहभू' कहते हैं। ईश्वर प्रणिधान से योग अन्तरायों का अभाव हो जाता है (अन्तराया अभावश्च, योग सूत्र 1/29) इसलिए सभी प्रकार के चित्त विक्षेपों एवं दुखों का अन्त हो जाता है। अतः ईश्वर की कृपा से उसके नाम जप व ध्यान से योगी योग के सभी प्रकार के विघ्नों से मुक्त होकर सरलता पूर्वक अपने योग पथ पर अग्रसर होता हुआ स्वलक्ष्य की प्राप्ति में समर्थ हो जाता है।

19.5.7 योग दर्शन में ईश्वर की उपयोगिता एवं समीक्षाः–

दार्शनिक दृष्टि से योग दर्शन सांख्य के समान होते हुए भी यदि सांख्य दर्शन से अलग अपना विशिष्ट स्थान रखता है तो ईश्वर की अवधारणा के कारण। ईश्वर तत्व ही सेश्वर सांख्य और निरीश्वर सांख्य का भेद दर्शन जगत में लाता है। योग दर्शन ईश्वर को स्वीकार करने के कारण सेश्वर सांख्य कहलाता है जबकि सांख्य दर्शन ईश्वर को न मानने के नाते निरीश्वर सांख्य। ईश्वर को मानकर योग दर्शन ने सांख्य की कठिनाइयों को अपने दर्शन में नहीं आने दिया है। ईश्वर को स्वीकार न करने के कारण ही सांख्य दर्शन अनेक उदाहरणों उपमाओं का सहारा लेकर भी प्रकृति–पुरुष संयोग की व्याख्या कर पाने में असफल रहता है। सांख्य दर्शन का विकासवाद सृष्टि प्रक्रिया की व्याख्या आदि तार्किक दृष्टिकोण से ईश्वर के अभाव में असंगत प्रतीत होते हैं। ईश्वर के अभाव में अचेतन प्रकृति और निष्क्रिय चेतन पुरुष का सम्बन्ध स्थापित होना एक कठिन समस्या है और इस समस्या से सांख्य मुक्ति नहीं पाता किन्तु योग दर्शन ईश्वर को स्वीकार करके सांख्य की समस्या का समाधान कर देता है। ईश्वर ही वह समर्थ सत्ता परम पुरुष है जो प्रकृति और पुरुष का संयोग कराने में सहायक है। इस दृष्टि से योग दर्शन का ईश्वर विचार उसे सांख्य दर्शन का अग्रगामी बना देता है।

इस ईश्वरीय महिमा के बावजूद योग दर्शन में ईश्वर सम्बन्धी विचार संतोष जनक प्रतीत नहीं होता। न्याय दर्शन की तरह योग दर्शन का ईश्वर जगत का सृष्टि कर्ता पालन कर्ता एवं सहार कर्ता नहीं है वह तो केवल प्रकृति और पुरुष के मध्य संयोजक और वियोजक का कार्य करने वाला है। सृष्टि के उद्भव और विकास में उसकी इस से अलग कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं है। ईश्वर पुरुष–विशेष है, विश्व का स्रष्टा नहीं है। योग का ईश्वर कर्म नियम का अध्यक्ष भी नहीं है। वह मनुष्य को उनके कर्मों के लिए पुरस्कार या दण्ड़ नहीं देता। उसे हमारे कर्मो से कोई विशेष मतलब नहीं रहता किन्तु जब हम ईश्वर का ध्यान जप करते है तो वह हमारे पुण्य वृद्धि और पाप क्षय (चित्त शुद्धि) में सहायक अवश्य होता है। ईश्वर कैवल्य प्राप्ति (मोक्ष) में मात्र सहायक है, वह कैवल्य प्रदान करने वाला नहीं है।

योग दर्शन का ईश्वर जीवन का लक्ष्य नहीं है। वह योग साधना का भी लक्ष्य नहीं है। वह तो केवल योग साधना में सहायक मात्र है। ईश्वर प्रणिधान चित्त की एकाग्रता एवं कैवल्य प्राप्ति के अनेक उपायों में से एक उपाय है। योग साधना का लक्ष्य समाधि है और ईश्वर समाधि का साधन। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि योग दर्शन में ईश्वर का स्थान गौण दिखता है। इसलिए शंकराचार्य ने अपने ब्रह्म सूत्र भाष्य में योग दर्शन के ईश्वर विषयक विचार को अपर्याप्त सिद्ध किया है। (ब्रह्म सूत्र शांकारभाष्य 2/2/38–41)

वास्तव में योग दर्शन एक व्यावहारिक दर्शन है। इसलिए इसमें ईश्वर का भी सैद्धान्तिक के बजाय व्यावहारिक महत्त्व अधिक है। सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, दयालु, जीव कल्याण में सहयोगी, सभी जीवों का पथ प्रदर्शक, गुरुओं का भी गुरु, हमारे उत्कर्ष में सहायक, दुखों से मुक्ति दिलाने वाला परमेश्वर दार्शनिक एवं व्यावहारिक हर दृष्टि से उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है।

अभ्यास प्रश्न

1 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः–

(क) जो भोगों से रहित है वही............................है।

(ख) कर्मो के फल को....................................कहते हैं।

(ग) कर्म संस्कारों के समुदाय का नाम है–.......................... ।

(घ) ईश्वर सृष्टि का..........................कारण है।

(ङ) ईश्वर प्रणिधान से.....................की प्राप्ति हो जाती है।

2 सत्य/असत्य बताइयेः–

(क) योग दर्शन में ईश्वर सृष्टि का उपादान कारण है।

(ख) शब्द प्रमाण ईश्वर की सिद्धि में सहायक नहीं है।

(ग) ईश्वर में ज्ञान और शक्ति की पराकाष्ठा है।

(घ) ईश्वर मुक्त आत्माओं के समान है।

(ङ) ईश्वर का नाम प्रणव है।

3 संक्षिप्त अन्तर बताइयेः–

(क) उपादान कारण और निमित्त कारण।

(ख) सेश्वर सांख्य और निरीश्वर सांख्य।

(ग) पुरुष एवं विशेष पुरुष।

(घ) आलस्य एवं प्रमाद।

(ङ) संयोग एवं वियोग।

4 अतिलघुत्तरीय प्रश्नः–

(क) पंचक्लेश कौन कौन से हैं?

(ख) क्लेश का परिणाम क्या है?

(ग) योग सूत्र में ईश्वर प्रणिधान का उल्लेख कहाँ–कहाँ हुआ है?

(घ) क्रियायोग किसे कहते हैं?

(ङ) दुख कितने प्रकार का होता है?

19.6 सारांश

इस इकाई में अब तक आप को ज्ञात हो चुका होगा कि योग दर्शन आस्तिक दर्शन होने के साथ साथ ईश्वरवादी दर्शन भी है। सांख्य और योग दर्शन समान तन्त्र हैं। योग दर्शन सांख्य के तत्वमीमांसीय विचारों को स्वीकार करते हुए उसमें ईश्वर की अवधारणा भी जोड़ देता है। ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करने के कारण ही योग दर्शन को सेश्वर सांख्य कहा जाता है।

ईश्वर का अर्थ है– ऐश्वर्य युक्त सत्ता। ईश्वर आधिपत्य, यश, वीर्य, श्री, ज्ञान और वैराग्य रूपी षडैश्वर्य सम्पन्न है। योग दर्शन का ईश्वर अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश जैसे पंचक्लेशों, इन क्लेशों से उत्पन्न कर्म, कर्मफल एवं संस्कारों से सर्वथा मुक्त, पुरुष विशेष है जो नित्य, शाश्वत, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, अनादि, अनन्त एवं पूर्ण है। ईश्वर त्रिगुणातीत है। वह जन्म मृत्यु से परे, दयालु, क्षमाशील, एवं साधकों का सहयोगी है। उसका नाम प्रणव यानी ॐकार है। प्रणव के जप और तदनुरूप भावना से साधक के योग मार्ग के विध्नों का नाश हो जाता है और चित्त शुद्धि के साथ समाधि का मार्ग सुगम हो जाता है।

अन्य ईश्वरवादी भारतीय दर्शनों की तरह योग दार्शनिकों ने भी ईश्वर को युक्तियों से सिद्ध करने का प्रयास किया है। योग ईश्वर को अपनाकर सांख्य की समस्याओं से स्वयं को बचा लेता है। योग का ईश्वर प्रकृति और पुरुष के संयोग में सहायक है। इन महत्ताओं के बावजूद योग दर्शन में ईश्वर का सैद्धान्तिक के बजाय व्यावहारिक महत्त्व अधिक है।

19.7 शब्दावली

प्रवृत्ति	–	स्वभाव
जिज्ञासा	–	जानने की इच्छा
व्याप्त	–	मौजूद
भर्ता	–	भरण पोषण करने वाला
कर्त्ता	–	उत्पन्न करने वाला
हर्ता	–	संहार करने वाला
परवर्ती	–	बाद के
नैयायिक	–	न्याय दार्शनिक
विशद्	–	व्यापक
अल्पज्ञ	–	कम बुद्धि वाला, कमजानने वाला
अनित्य	–	नाशवान
गुणक्षोभ	–	सत, रज, तम गुणों में परिवर्तन
सर्वथा	–	पूरी तरह से
नित्य	–	हमेशा रहने वाला, शाश्वत
आप्तकाम	–	जिसकी सभी इच्छाए पूर्ण हों
पराकाष्ठा	–	सर्वोच्चसीमा, पूर्णता
उपदेष्टा	–	उपदेश देने वाला
वाचक	–	नाम
कैवल्य	–	मुक्ति या मोक्ष
समाविष्ट	–	शामिल, सम्मिलित

जीव	–	बन्धन ग्रस्त पुरुष
उत्कर्ष	–	उन्नति
उत्कृष्ट	–	श्रेष्ठ, विशेष

19.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (क) ईश्वर **(ख)** विपाक **(ग)** आशय **(घ)** निमित्त **(ङ)** समाधि।

2. (क) असत्य **(ख)** असत्य **(ग)** सत्य **(घ)** असत्य **(ङ)** सत्य।

3. (क) किसी वस्तु के निर्माण में सामग्री को उपादान कारण एवं चेतन सहयोगी शक्ति को निमित्त कारण कहते हैं।

(ख) योग दर्शन सेश्वर सांख्य कहलाता है जबकि कपिल का सांख्य दर्शन निरीश्वर सांख्य।

(ग) पंचक्लेश आदि से सर्वथा मुक्त ईश्वर विशेष पुरुष कहलाता है जबकि अन्य चेतन सत्ताए पुरुष हैं।

पुरुष का जन्म मृत्यु और कैवल्य होता है। जबकि विशेष पुरुष इन से सर्वथा मुक्त है।

(घ) शरीर की अकर्मण्यता आलस्य है जबकि मन का लापरवाही अस्थिरता प्रमाद।

(ङ) किसी से जुड़ना संयोग है अलग हो जाना वियोग। प्रकृति–पुरुष का संयोग सृष्टि है एवं वियोग प्रलय।

4 (क) अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पंच क्लेश है।

(ख) क्लेश का परिणाम दुख होता है।

(ग) योग सूत्र के समाधिपाद का 23 वे एवं साधनपाद का पहले, 32 वें और 45 वें सूत्र में ईश्वर प्रणिधान का उल्लेख है।

(घ) तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान को क्रिया योग कहते हैं।

(ङ) दुख तीन प्रकार का होता है– आध्यात्मिक दुख, अधिदैविक दुख, एवं आधि भौतिक दुख।

19.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. महर्षि पतंजलि– योग दर्शन, गीता प्रेस गोरखपुर।

2. तीर्थ, श्री स्वामी ओमानन्द– पांतजल योग प्रदीप, गीताप्रेस गोरखपुर।

3. राधा कृष्णन, डॅा सर्वपल्ली– भारतीय दर्शन।

4. शर्मा, चन्द्रधर– भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।

5. शर्मा, कार्यानन्द, भारतीय दर्शन के मूल सम्प्रत्यय, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

6. सिंहा, हरेन्द्रप्रसाद– भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।

7. चतुर्वेदी, गिरधर शर्मा– दर्शन अनुचिंतन, भारतीय ज्ञान पीठ वाराणसी।

8. निगम, डॉ॰ शोभा– भारतीय दर्शन, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।

9. भारतीय, डॉ॰ महेश– भारतीय दर्शन की प्रमुख समस्याएँ, इण्डोबिजन प्राइवेट लिमिटेड, गाजियाबाद।

10. पाठक, राममूर्ति– भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूप रेखा, अभिमन्यु प्रकाशन, इलाहाबाद

11. द्विवेदी डॉ॰ कपिल देव– साधना और सिद्धि, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी।

12. सेठ अनुपमा– योग दर्शन में ईश्वर प्रणिधान की व्याख्या, नाग प्रकाशन दिल्ली।

19.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय दर्शन के परिप्रेक्ष्य में ईश्वर की अवधारणा पर प्रकाश डालिए।

2. ईश्वर क्या है? न्याय दर्शन ईश्वर के अस्तित्व को किस प्रकार प्रमाणित करता है।

3. योग दर्शन के अनुसार ईश्वर के स्वरूप की विवेचना कीजिए।

4. योग दर्शन में ईश्वर के अस्तित्व को किस प्रकार सिद्ध किया गया है? व्याख्या करें।

5. योग दर्शन में ईश्वर के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

6. ईश्वर प्रणिधान क्या है? इसके फल की विवेचना करें।

7. योग अन्तराय से आप क्या समझते है? स्पष्ट करें।